# Dependent Origination: A Philosophical Interpretation of the Buddha's Theory of Causation and Its Formulation in the *Pāli Nikāyas*

Dr. Shiv Prasad *Pāñche*
Assistant Professor, University of Delhi, New Delhi

**Abstract**

Dependent Origination (*Pratītyasamutpāda*) constitutes the central principle of the Buddha's philosophical teaching. This research paper presents an analytical study of the philosophical interpretation of Dependent Origination as expounded in the *Pāli Tripiṭaka*, along with an examination of its various formulations. Drawing upon the *Nidāna Saṃyutta* of the *Saṃyutta Nikāya*, the *Mahānidāna* Sutta, and other major canonical texts, the study undertakes a detailed analysis of the twelve links (*dvādaśa nidānas*). Through the forward (anuloma) and reverse (pratiloma) sequences, the processes of the arising and cessation of suffering are systematically clarified. The study further highlights the intrinsic relationship between Dependent Origination and the Four Noble Truths. The conclusion establishes that Dependent Origination is not merely of historical philosophical significance, but also remains a powerful conceptual framework for understanding human consciousness and causal relations in the modern age.

**Keywords**: Dependent Origination (*Pratītyasamutpāda*), *Paṭicca-samuppāda*, Twelve Links (*dvādaśa nidānas*), forward and reverse order (anuloma–pratiloma), *Pāli Nikāyas*, causation theory, Buddhist philosophy, Four Noble Truths, conditionality (hetu-pratyaya), cessation of ignorance (*avidyā*-nirodha).

# प्रतीत्यसमुत्पाद: बुद्ध के कार्य-कारण सिद्धांत की दार्शनिक व्याख्या और पालि निकायों में इसका स्वरूप

डॉ. शिव प्रसाद पाँचे
सहायक प्राध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

## सार

प्रतीत्यसमुत्पाद बुद्ध के दार्शनिक चिंतन का केंद्रबिंदु है। यह शोध पत्र पालि त्रिपिटक में प्रस्तुत प्रतीत्यसमुत्पाद की दार्शनिक व्याख्या और इसके विभिन्न स्वरूपों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। संयुत्त निकाय के निदान संयुत्त, महानिदान सुत्त तथा अन्य प्रमुख ग्रंथों के आधार पर द्वादश निदानों की गहन समीक्षा की गई है। अनुलोम और प्रतिलोम क्रम के माध्यम से दुःख की उत्पत्ति और निरोध की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। यह अध्ययन चार आर्य सत्यों के साथ प्रतीत्यसमुत्पाद के अंतर्संबंध को भी रेखांकित करता है। पालि भाषा की शब्दावली का सूक्ष्म विश्लेषण और समकालीन प्रासंगिकता का मूल्यांकन इस शोध की विशेषता है। निष्कर्ष में यह स्थापित किया गया है कि प्रतीत्यसमुत्पाद न केवल ऐतिहासिक दार्शनिक महत्व रखता है, बल्कि आधुनिक युग में भी मानव चेतना और कार्य-कारण संबंधों को समझने का सशक्त उपकरण है।

**मुख्य शब्द:** प्रतीत्यसमुत्पाद, पटिच्चसमुप्पाद, द्वादश निदान, अनुलोम-प्रतिलोम, पालि निकाय, कार्य-कारण सिद्धांत, बौद्ध दर्शन, आर्य सत्य, हेतु-प्रत्यय, अविद्या निरोध।

## प्रस्तावना

बौद्ध दर्शन की समस्त शिक्षाओं में प्रतीत्यसमुत्पाद सर्वाधिक मौलिक और गूढ़ सिद्धांत है। संस्कृत में "प्रतीत्यसमुत्पाद" और पालि में "पटिच्चसमुप्पाद" कहलाने वाला यह सिद्धांत समस्त अस्तित्व के परस्पर अवलंबन और सापेक्षता को प्रतिपादित करता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से "प्रतीत्य" का अर्थ "आश्रित होकर" या "निर्भर करके" है, जबकि "समुत्पाद" का तात्पर्य "उत्पत्ति" या "उदय" से है। इस प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाद का शाब्दिक अर्थ है - "किसी अन्य वस्तु पर निर्भर करके उत्पन्न होना" या "सापेक्ष उत्पत्ति"। क्या कोई घटना स्वतंत्र रूप से घटित हो सकती है? क्या अस्तित्व का कोई तत्व निरपेक्ष हो सकता है? बुद्ध ने इन गूढ़ प्रश्नों का उत्तर प्रतीत्यसमुत्पाद के माध्यम से दिया है। महानिदान सुत्त में बुद्ध स्वयं घोषित करते हैं कि यह सिद्धांत "गंभीर और गहन प्रतीत होता है" तथा इसे न समझने और न जानने के कारण ही प्राणी "धागे की गुत्थी की भांति उलझ जाते हैं" और जन्म-मरण के चक्र में भ्रमण करते रहते हैं। यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि प्रतीत्यसमुत्पाद केवल एक दार्शनिक विचार नहीं, अपितु बुद्ध की शिक्षाओं का हृदय है, जिसके बिना मुक्ति और निर्वाण की अवधारणा अपूर्ण रहती है।

बौद्ध दर्शन में इस सिद्धांत का स्थान इतना महत्वपूर्ण है कि परंपरागत रूप से यह कहा जाता है –

*"यो पटिच्चसमुप्पादं पस्सति, सो धम्मं पस्सति; यो धम्मं पस्सति, सो बुद्धं पस्सति।"*

अर्थात "जो प्रतीत्यसमुत्पाद को देखता है, वह धम्म को देखता है; जो धम्म को देखता है, वह बुद्ध को देखता है।"

यह कथन इस सिद्धांत की केंद्रीयता को प्रमाणित करता है। प्रतीत्यसमुत्पाद न तो शाश्वतवाद (eternalism) का समर्थन करता है और न ही उच्छेदवाद (nihilism) का; यह मध्यम मार्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो दोनों अतिवादी दृष्टिकोणों से परे है। पालि त्रिपिटक में, विशेषकर संयुत्त निकाय के निदान संयुत्त में, इस सिद्धांत का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। दीघ निकाय का

महानिदान सुत्त तो इस विषय पर सर्वाधिक प्रामाणिक और व्यापक ग्रंथ माना जाता है। मज्झिम निकाय और अंगुत्तर निकाय में भी अनेक स्थलों पर इस सिद्धांत के विविध आयामों की चर्चा मिलती है।

वर्तमान शोध का मुख्य उद्देश्य पालि निकायों में प्रस्तुत प्रतीत्यसमुत्पाद के मूल स्वरूप की पहचान करना और इसकी दार्शनिक व्याख्या को समकालीन संदर्भ में प्रासंगिक बनाना है। शोध प्रश्न यह है कि पालि त्रिपिटक में प्रतीत्यसमुत्पाद किन-किन रूपों में प्रस्तुत किया गया है, और द्वादश निदानों की परंपरा कितनी प्राचीन है? क्या यह सूची मूल बौद्ध शिक्षाओं का भाग है, अथवा परवर्ती विकास? इस शोध की परिकल्पना यह है कि प्रतीत्यसमुत्पाद का द्वादशांग स्वरूप बुद्ध के समय से ही विद्यमान था, और विभिन्न संदर्भों में इसकी प्रस्तुति में विविधता श्रोताओं और उद्देश्यों के अनुसार की गई थी।

इस शोध की प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि आधुनिक युग में, जब कार्य-कारण संबंधों की समझ विज्ञान और दर्शन दोनों क्षेत्रों में पुनर्मूल्यांकित की जा रही है, प्रतीत्यसमुत्पाद एक नवीन परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। क्वांटम भौतिकी में परस्पर अवलंबन की अवधारणा और प्रणाली सिद्धांत (systems theory) में संबंधात्मक दृष्टिकोण, बुद्ध के इस प्राचीन सिद्धांत की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं।

हालांकि, वर्तमान साहित्य में एक महत्वपूर्ण शोध अंतराल यह है कि पालि निकायों में प्रतीत्यसमुत्पाद के विभिन्न स्वरूपों का व्यापक तुलनात्मक विश्लेषण अभी भी अधूरा है। विशेषकर निदान संयुत्त के विभिन्न सुत्तों में प्रस्तुत विविधताओं का समन्वित अध्ययन आवश्यक है । इसके अतिरिक्त, पालि भाषा की सूक्ष्म शब्दावली और इसके दार्शनिक निहितार्थों पर हिंदी में गहन शोध की आवश्यकता है। वर्तमान शोध इसी अंतराल को भरने का प्रयास है।

## सैद्धांतिक पृष्ठभूमि: प्रतीत्यसमुत्पाद का दार्शनिक विश्लेषण

### प्रतीत्यसमुत्पाद का मूल सिद्धांत

बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद का सार एक संक्षिप्त किंतु गहन सूत्र में प्रस्तुत किया है। पालि भाषा में यह सूत्र इस प्रकार है:

*"इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति। इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झति।"*

अर्थात "जब यह होता है, तब वह होता है; इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न होता है। जब यह नहीं होता, तब वह नहीं होता; इसके निरोध से वह निरुद्ध होता है।"

यह सूत्र प्रतीत्यसमुत्पाद का मूल आधार है और इसमें चार महत्वपूर्ण तत्व सम्मिलित हैं। प्रथम, सत्ता का सकारात्मक सहअस्तित्व (इमस्मिं सति इदं होति) - जो यह दर्शाता है कि दो घटनाओं का सहअस्तित्व आवश्यक है। द्वितीय, उत्पत्ति का सकारात्मक क्रम (इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति) - जो कार्य-कारण के क्रमिक संबंध को प्रकट करता है। तृतीय, सत्ता का नकारात्मक सहअस्तित्व (इमस्मिं असति इदं न होति) - जो यह स्पष्ट करता है कि एक के अभाव में दूसरे का भी अभाव होता है। चतुर्थ, निरोध का नकारात्मक क्रम (इमस्स निरोधा इदं निरुज्झति) - जो मुक्ति की संभावना को इंगित करता है।

इस सूत्र की दार्शनिक गहराई अत्यंत विस्मयकारी है। यह न तो परम कारण (First Cause) की अवधारणा स्वीकार करता है और न ही यादृच्छिकता (randomness) को। प्रत्येक घटना अनेक कारणों और प्रत्ययों पर निर्भर करती है, और स्वयं भी अन्य घटनाओं के लिए कारण या प्रत्यय बनती है। यह एक जटिल अंतर्संबंधों का जाल है, जिसमें प्रत्येक बिंदु अन्य बिंदुओं से जुड़ा हुआ है। हेतु और प्रत्यय के बीच सूक्ष्म अंतर को समझना आवश्यक है। "हेतु" प्रत्यक्ष कारण को इंगित करता है, जबकि "प्रत्यय" सहायक या अप्रत्यक्ष कारणों को । उदाहरणार्थ, बीज वृक्ष का हेतु है, किंतु मिट्टी, जल, सूर्य का प्रकाश आदि प्रत्यय हैं। इसी प्रकार, अविद्या दुःख का मूल हेतु है, किंतु अन्य ग्यारह निदान प्रत्यय के रूप में कार्य करते हैं। यह विशिष्टता बौद्ध कार्य-कारण सिद्धांत को एकरेखीय कारणता (linear causation) से भिन्न बनाती है।

## अनुलोम और प्रतिलोम क्रम

प्रतीत्यसमुत्पाद को दो क्रमों में समझा जाता है - अनुलोम पटिच्चसमुप्पाद (Forward Conditionality) और प्रतिलोम पटिच्चसमुप्पाद (Reverse Conditionality) है। अनुलोम क्रम दुःख की उत्पत्ति की प्रक्रिया को दर्शाता है, जबकि प्रतिलोम क्रम दुःख के निरोध की प्रक्रिया को दर्शाता है। अनुलोम क्रम में अविद्या से आरंभ होकर जरामरण तक की यात्रा प्रस्तुत की जाती है। यह क्रम यह समझाता है कि किस प्रकार अज्ञानता के कारण संस्कार निर्मित होते हैं, संस्कार से विज्ञान उत्पन्न होता है, और अंततः यह प्रक्रिया जन्म, जरा और मरण तक पहुंचती है। यह चक्र अनवरत चलता रहता है और जीव संसार में भ्रमण करता रहता है। अनुलोम क्रम संसार की व्याख्या है - यह दर्शाता है कि दुःख कैसे उत्पन्न होता है और क्यों प्राणी बार-बार जन्म लेते हैं। प्रतिलोम क्रम इसका विलोम है। जब अविद्या का पूर्ण निरोध हो जाता है, तब संस्कार नहीं बनते; संस्कार के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है, और इस प्रकार क्रमशः सभी निदानों का निरोध होकर अंततः जरामरण का निरोध हो जाता है । यह निर्वाण की प्रक्रिया है। प्रतिलोम क्रम यह प्रदर्शित करता है कि मुक्ति संभव है; दुःख शाश्वत नहीं है, और उचित प्रयास से इसका निरोध किया जा सकता है।

इन दोनों क्रमों का सोतेरियोलॉजिकल (मोक्ष संबंधी) महत्व अत्यधिक है। अनुलोम क्रम हमें संसार की प्रकृति समझाता है और दुःख के कारणों को पहचानने में सहायता करता है। प्रतिलोम क्रम आशा और मार्ग प्रदान करता है - यह बताता है कि निर्वाण केवल एक काल्पनिक अवस्था नहीं, बल्कि एक प्राप्य लक्ष्य है जिसे कारणों के निरोध द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यह बौद्ध धर्म की व्यावहारिकता और आशावादिता को प्रकट करता है ।

## द्वादश निदान का विस्तृत विवेचन

प्रतीत्यसमुत्पाद की सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रस्तुति द्वादश निदानों (बारह कड़ियों) के रूप में है। ये बारह निदान एक श्रृंखला में परस्पर संबद्ध हैं:

1. **अविद्या (*Avijjā* - Ignorance)**: यह प्रथम और मूल निदान है। अविद्या का अर्थ है चार आर्य सत्यों का अज्ञान - दुःख, समुदाय, निरोध और मार्ग का न जानना । यह केवल बौद्धिक अज्ञानता नहीं, बल्कि अस्तित्व की वास्तविकता के प्रति गहन भ्रम है। अविद्या में अनित्य को नित्य, दुःख को सुख, अनात्मा को आत्मा और अशुभ को शुभ समझना सम्मिलित है। यह संसार का मूल कारण है।

2. **संस्कार (*Saṅkhāra* - Volitional Formations)**: अविद्या के कारण संस्कार उत्पन्न होते हैं। संस्कार का अर्थ है कर्मजन्य प्रवृत्तियां या वासनाएं जो भविष्य के जन्मों को निर्धारित करती हैं। ये मानसिक, वाचिक और कायिक कर्म हैं जो अविद्या से प्रेरित होकर किए जाते हैं। संस्कार कर्म के संचय को दर्शाते हैं जो पुनर्जन्म का कारण बनते हैं।

3. **विज्ञान (*Viññāṇa* - Consciousness):** संस्कार के कारण नवीन जन्म में विज्ञान या चेतना का पुनः अवतरण होता है । यह गर्भ में प्रथम चेतना है जो माता के गर्भ में प्रवेश करती है। विज्ञान छह प्रकार के होते हैं - आंख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन से संबंधित। महानिदान सुत्त में बुद्ध ने स्पष्ट किया है कि विज्ञान और नामरूप परस्पर अवलंबित हैं।

4. **नामरूप (*Nāmarūpa* - Name-and-Form)**: विज्ञान के कारण नामरूप की उत्पत्ति होती है। "नाम" मानसिक घटकों को इंगित करता है - वेदना (अनुभूति), संज्ञा (प्रत्यभिज्ञान), चेतना और संस्कार। "रूप" भौतिक शरीर को दर्शाता है - चार महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु) और उनसे उत्पन्न रूप । यह गर्भ में भ्रूण के विकास को प्रतिबिंबित करता है।

5. **षडायतन (*Saḷāyatana* - Six Sense Bases):** नामरूप से छह इंद्रियों का विकास होता है - चक्षु (आंख), श्रोत्र (कान), घ्राण (नाक), जिह्वा (जीभ), काय (शरीर) और मनस् (मन)। ये छह आयतन बाह्य जगत के साथ संपर्क के द्वार हैं। इनके बिना संवेदन संभव नहीं है।

6. **स्पर्श (Phassa - Contact)**: षडायतन, विषय और विज्ञान के संयोग से स्पर्श उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ, आंख (इंद्रिय), रूप (विषय) और चक्षुविज्ञान (चेतना) के मिलन से चक्षुस्पर्श उत्पन्न होता है। स्पर्श संवेदन की प्रथम अवस्था है।

7. **वेदना (*Vedanā* - Feeling)**: स्पर्श से वेदना उत्पन्न होती है। वेदना तीन प्रकार की होती है - सुख, दुःख और अदुःखासुख (तटस्थ)। यह केवल शारीरिक संवेदना नहीं, बल्कि मानसिक अनुभूति भी है। वेदना अत्यंत महत्वपूर्ण निदान है क्योंकि यहीं से तृष्णा का जन्म होता है।

8. **तृष्णा (*Taṇhā* - Craving)**: वेदना से तृष्णा उत्पन्न होती है । तृष्णा तीन प्रकार की होती है - कामतृष्णा (इंद्रिय विषयों की लालसा), भवतृष्णा (अस्तित्व की लालसा) और विभवतृष्णा (अनस्तित्व की लालसा)। यह दुःख का तात्कालिक कारण है और दूसरे आर्य सत्य (समुदाय) से सीधा संबंध रखता है।

9. **उपादान (*Upādāna* - Clinging)**: तृष्णा से उपादान उत्पन्न होता है । उपादान चार प्रकार का होता है - कामोपादान (इंद्रिय विषयों से आसक्ति), दृष्ट्युपादान (गलत दृष्टिकोणों से आसक्ति), शीलव्रतोपादान (अनुष्ठानों से आसक्ति) और आत्मवादोपादान (आत्मा के सिद्धांत से आसक्ति)। उपादान तृष्णा का गहन रूप है।

10. **भव (Bhava - Becoming)**: उपादान से भव उत्पन्न होता है । भव दो प्रकार का है - कर्मभव (कर्मजन्य अस्तित्व) और पुनर्भव (पुनर्जन्म का अस्तित्व)। यह वह प्रक्रिया है जो पुनर्जन्म को सुनिश्चित करती है। कर्म और तृष्णा मिलकर भविष्य के जन्म का निर्माण करते हैं।

11. **जाति (*Jāti* - Birth)**: भव से जाति अर्थात् पुनर्जन्म होता है । यह विभिन्न प्राणियों के विभिन्न गतियों (देव, मनुष्य, तिर्यक्, प्रेत, नरक) में जन्म लेने को दर्शाता है। जाति के साथ नवीन जीवन का चक्र प्रारंभ होता है।

12. **जरामरण (*Jarāmaraṇa* - Aging-and-Death)**: जाति के कारण जरा (वृद्धावस्था) और मरण (मृत्यु) अनिवार्य है । इसके साथ शोक, परिदेव (विलाप), दुःख, दौर्मनस्य और उपायास (निराशा) भी आते हैं। यह संपूर्ण दुःख के समूह की उत्पत्ति है।

इन बारह निदानों की व्याख्या दो प्रमुख मॉडलों में की जाती है। प्रथम, तीन जन्मों का मॉडल जो बुद्धघोष द्वारा प्रस्तुत किया गया - इसमें पहले दो निदान पूर्व जन्म से, मध्य के आठ वर्तमान जन्म से, और अंतिम दो भविष्य जन्म से संबंधित माने जाते हैं । द्वितीय, वर्तमान क्षण का मॉडल जिसमें सभी बारह निदान एक जीवनकाल में या यहां तक कि एक क्षण में भी घटित हो सकते हैं । आधुनिक विद्वानों में इस बात पर विवाद है कि कौन सा मॉडल बुद्ध का मूल आशय है, किंतु दोनों व्याख्याओं में सत्य के तत्व विद्यमान हैं।

## पालि निकायों में प्रतीत्यसमुत्पाद का स्वरूप

### सुत्तपिटक में प्रतीत्यसमुत्पाद

पालि त्रिपिटक के सुत्तपिटक में प्रतीत्यसमुत्पाद की व्यापक चर्चा मिलती है। विशेष रूप से संयुत्त निकाय का संपूर्ण निदान संयुत्त इसी विषय को समर्पित है । निदान संयुत्त में नब्बे से अधिक सुत्त हैं जो प्रतीत्यसमुत्पाद के विभिन्न पहलुओं को प्रकाशित करते हैं। पहला सुत्त (SN 12.1) पटिच्चसमुप्पाद सुत्त नाम से जाना जाता है, जिसमें द्वादश निदानों की मूल सूची प्रस्तुत की गई है।

महानिदान सुत्त (*Mahānidāna* Sutta - DN 15) दीघ निकाय का एक अत्यंत महत्वपूर्ण सुत्त है। यह सुत्त कुरु देश के कम्मासधम्म नामक नगर में बुद्ध और आनंद के बीच हुए संवाद के रूप में है। आनंद कहते हैं- "भंते, यह प्रतीत्यसमुत्पाद अत्यंत गहन और गहन प्रतीत होता है, किंतु मुझे यह स्पष्ट प्रतीत होता है।" इस पर बुद्ध उत्तर देते हैं -"आनंद, ऐसा मत कहो। यह प्रतीत्यसमुत्पाद गहन है और गहन प्रतीत होता है। इसे न समझने और न भेदने के कारण ही यह प्रजा धागे की गुत्थी की भांति

उलझ गई है और कुश और वीरण घास की भांति एक-दूसरे में फंस गई है, तथा दुर्गति, विनिपात और संसार से पार नहीं हो पाती"।

महानिदान सुत्त में विज्ञान और नामरूप के परस्पर अवलंबन पर विशेष बल दिया गया है। बुद्ध कहते हैं कि विज्ञान नामरूप में प्रवेश नहीं करे तो क्या नामरूप में वृद्धि होगी? नहीं। यदि शैशवकाल में किसी बालक का विज्ञान नष्ट हो जाए तो क्या नामरूप परिपक्व होगा? नहीं। इस प्रकार नामरूप विज्ञान के लिए हेतु है और विज्ञान नामरूप के लिए । यह परस्पर कारणता की अद्भुत व्याख्या है।

मज्झिम निकाय में भी अनेक स्थलों पर प्रतीत्यसमुत्पाद का उल्लेख है। MN 148 (छक्का-हत्थी-पदोपम सुत्त) में छह इंद्रियों के संदर्भ में प्रतीत्यसमुत्पाद की व्याख्या की गई है। MN 38 (महातण्हासंखय सुत्त) में विज्ञान की प्रकृति पर विस्तृत चर्चा है। दीघ निकाय के अतिरिक्त अंगुत्तर निकाय में भी कई सुत्तों में इस सिद्धांत का उल्लेख मिलता है।

पालि गाथाओं में प्रतीत्यसमुत्पाद की अभिव्यक्ति अत्यंत सुंदर है। प्रसिद्ध गाथा है:

*"ये धम्मा हेतुप्पभवा, तेसं हेतुं तथागतो आह; तेसं च यो निरोधो, एवंवादी महासमणो।"*

अर्थात् "जो धर्म हेतु से उत्पन्न होते हैं, तथागत ने उनके हेतु का उपदेश दिया है; और उनका निरोध भी - यही महाश्रमण का वचन है।" यह गाथा बुद्ध की शिक्षा का सार है।

## त्रिपिटक में विभिन्न प्रस्तुतियाँ

विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक - तीनों में प्रतीत्यसमुत्पाद के स्वरूप में सूक्ष्म भिन्नताएं हैं। विनय पिटक में महावग्ग के बोधिकथा में बुद्ध के बोधिवृक्ष के नीचे प्रतीत्यसमुत्पाद का चिंतन करने का वर्णन है। यहां अनुलोम और प्रतिलोम दोनों क्रमों में इसका चिंतन बताया गया है।

सुत्त पिटक में सबसे विस्तृत और विविधतापूर्ण प्रस्तुति है। संयुत्त निकाय में कुछ सुत्तों में द्वादश निदानों से कम निदान भी दिए गए हैं। उदाहरणार्थ, SN 12.65 और SN 12.67 में केवल विज्ञान और नामरूप के परस्पर संबंध पर चर्चा है । कहीं तृष्णा से प्रारंभ करके जरामरण तक की सूची दी गई है। यह विविधता यह दर्शाती है कि बुद्ध ने विभिन्न संदर्भों और श्रोताओं के अनुसार इस सिद्धांत को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया। अभिधम्म पिटक में, विशेषकर पट्ठान में, प्रतीत्यसमुत्पाद को चौबीस प्रत्ययों के सिद्धांत के रूप में विस्तारित किया गया है। यह अत्यधिक तकनीकी और विश्लेषणात्मक प्रस्तुति है जो द्वादश निदानों से आगे जाकर समस्त धम्मों के परस्पर संबंधों को स्पष्ट करती है। यहां प्रत्ययों के प्रकार जैसे हेतु-प्रत्यय, आरम्मण-प्रत्यय, अधिपति-प्रत्यय आदि का विस्तृत विवेचन है।

विभिन्न निकायों में प्रस्तुति की यह विविधता यह संकेत करती है कि प्रतीत्यसमुत्पाद एक जीवंत शिक्षा थी, न कि कोई कठोर सूत्र। बुद्ध ने इसे परिस्थिति के अनुसार ढालकर प्रस्तुत किया। कभी संपूर्ण द्वादश निदानों की सूची दी, कभी केवल कुछ महत्वपूर्ण कड़ियों पर बल दिया, और कभी परस्पर कारणता के सामान्य सिद्धांत को प्रतिपादित किया।

## पालि भाषा और शब्दावली का विश्लेषण

पालि शब्दावली की सूक्ष्म समझ प्रतीत्यसमुत्पाद को गहराई से समझने के लिए आवश्यक है। "पटिच्चसमुप्पाद" शब्द तीन भागों से बना है - "पटिच्च" (आश्रित होकर), "सम्" (संयुक्त रूप से) और "उप्पाद" (उत्पत्ति) । इसका तात्पर्य है - संयुक्त रूप से, एक-दूसरे पर आश्रित होकर उत्पन्न होना।

"निदान" शब्द का अर्थ है "कारण", "मूल" या "श्रोत" । द्वादश निदान अर्थात् बारह कारण या बारह कड़ियां। "पच्चय" का अर्थ है "सहायक कारण" या "प्रत्यय"। "इदप्पच्चयता" (*idappaccayatā*) का अर्थ है "इस प्रत्यय के कारण होना" - यह प्रतीत्यसमुत्पाद का एक अन्य नाम है।

संस्कृत और पालि शब्दों में सूक्ष्म अंतर हैं। संस्कृत में "प्रतीत्य" है, पालि में "पटिच्च"; संस्कृत में "संस्कार" है, पालि में "सङ्खार"; संस्कृत में "विज्ञान" है, पालि में "विञ्ञाण"। ये ध्वन्यात्मक परिवर्तन हैं, किंतु अर्थ में कोई मूलभूत अंतर नहीं है।

"अविज्जा" (अविद्या) शब्द "न जानना" को दर्शाता है। यह केवल ज्ञान का अभाव नहीं, बल्कि विपरीत ज्ञान है। "सङ्खार" का अर्थ है "संस्कृत करना" या "निर्मित करना" - ये वे मानसिक निर्माण हैं जो कर्म के फलस्वरूप बनते हैं। "नामरूप" में "नाम" मानसिक घटकों को और "रूप" भौतिक तत्वों को इंगित करता है।

"तण्हा" (तृष्णा) शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका शाब्दिक अर्थ है "प्यास" या "तृषा"। यह जीवन के प्रति तीव्र लालसा को दर्शाता है। "उपादान" का अर्थ है "पकड़े रहना" या "आसक्त होना" - यह तृष्णा का गहन रूप है जहां व्यक्ति वस्तुओं को अपना मानने लगता है।

पालि भाषा की यह सूक्ष्म शब्दावली दर्शाती है कि प्रतीत्यसमुत्पाद केवल दार्शनिक सिद्धांत नहीं, बल्कि मानव मनोविज्ञान का गहन विश्लेषण है।

## प्रतीत्यसमुत्पाद का आर्य सत्य के साथ संबंध

चार आर्य सत्यों और प्रतीत्यसमुत्पाद के बीच गहन और अविभाज्य संबंध है। वस्तुतः, प्रतीत्यसमुत्पाद चार आर्य सत्यों का विस्तृत विवेचन है। प्रथम आर्य सत्य "दुःख" है - जन्म दुःख है, जरा दुःख है, मरण दुःख है। यह द्वादश निदानों में जाति और जरामरण से प्रतिबिंबित होता है।

द्वितीय आर्य सत्य "दुःख समुदाय" अर्थात् दुःख की उत्पत्ति है। यह तृष्णा है जो पुनर्भव का कारण बनती है। अनुलोम प्रतीत्यसमुत्पाद इसी दुःख समुदाय का विस्तृत विश्लेषण है। अविद्या से आरंभ होकर तृष्णा और उपादान के माध्यम से जरामरण तक की यात्रा दुःख की उत्पत्ति की संपूर्ण प्रक्रिया को स्पष्ट करती है। AN 3.61 में स्पष्ट कहा गया है कि दूसरा और तीसरा आर्य सत्य सीधे प्रतीत्यसमुत्पाद से संबंधित हैं।

तृतीय आर्य सत्य "दुःख निरोध" है - तृष्णा का पूर्ण विराग और निरोध निर्वाण है। प्रतिलोम प्रतीत्यसमुत्पाद इस निरोध का मार्ग दिखाता है। जब अविद्या का निरोध होता है, तो संस्कार का निरोध होता है; इस प्रकार क्रमशः सभी निदानों का निरोध होकर दुःख का पूर्ण निरोध हो जाता है। यह निर्वाण की प्राप्ति है।

चतुर्थ आर्य सत्य "दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा" अर्थात् दुःख निरोध का मार्ग है - यह आर्य अष्टांग मार्ग है। SN 12.28 के अनुसार, आर्य अष्टांग मार्ग वह पथ है जो द्वादश निदानों के निरोध की ओर ले जाता है, और यह "सभी संस्कृत धर्मों में श्रेष्ठ" है । सम्यक् दृष्टि से आरंभ होकर सम्यक् समाधि तक का मार्ग अविद्या के निरोध का साधन है। जब सम्यक् दृष्टि विकसित होती है, तो अविद्या का स्थान विद्या ले लेती है, और इस प्रकार संपूर्ण श्रृंखला टूट जाती है।

प्रतीत्यसमुत्पाद का अनात्मवाद (*anattā*) के साथ भी गहरा संबंध है । द्वादश निदानों की संपूर्ण प्रक्रिया में कहीं भी किसी स्थायी आत्मा या अहं की आवश्यकता नहीं है। प्रक्रिया स्वयं चलती रहती है - कर्ता के बिना कर्म, भोक्ता के बिना भोग। यह "शून्यता में द्वादशांग शून्यता" है। जो इसे सही रूप से देखता है, वह आत्मदृष्टि को त्याग देता है और कर्ता के अभाव को समझ लेता है।

अनित्यवाद (*aniccā*) भी प्रतीत्यसमुत्पाद में निहित है। सभी निदान क्षणिक हैं, परिवर्तनशील हैं। कोई भी निदान स्थायी नहीं है। यह निरंतर प्रवाह है जहां हर क्षण नया है। यह अनित्यता ही दुःख का कारण है, और इसी को समझना मुक्ति का मार्ग है।

## समकालीन प्रासंगिकता और समालोचनात्मक मूल्यांकन

इक्कीसवीं सदी में प्रतीत्यसमुत्पाद की प्रासंगिकता न केवल बनी हुई है, बल्कि और भी बढ़ गई है। आधुनिक विज्ञान, विशेषकर क्वांटम भौतिकी, ने दर्शाया है कि कणों का अस्तित्व स्वतंत्र नहीं, बल्कि परस्पर संबंधों पर निर्भर है। क्वांटम उलझाव

(quantum entanglement) की घटना प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धांत की पुष्टि करती प्रतीत होती है। प्रणाली सिद्धांत (systems theory) में भी यह माना जाता है कि संपूर्ण इकाइयों के अलग-अलग भागों के योग से अधिक है, और सभी भाग परस्पर संबंधित हैं।

पारिस्थितिकी विज्ञान (ecology) में तो प्रतीत्यसमुत्पाद की प्रासंगिकता स्पष्ट है। जैव विविधता, खाद्य श्रृंखला, पारिस्थितिकी तंत्र - सभी परस्पर अवलंबन के उदाहरण हैं। एक प्रजाति के विलोप्त होने से संपूर्ण तंत्र प्रभावित होता है। यह प्रतीत्यसमुत्पाद का जीवंत उदाहरण है।

मनोविज्ञान में प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुप्रयोग संज्ञानात्मक-व्यवहार चिकित्सा (cognitive-behavioral therapy) में देखा जा सकता है। विचार, भावना और व्यवहार के बीच के संबंध प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धांत को प्रतिबिंबित करते हैं। संघर्ष समाधान में भी इस सिद्धांत का उपयोग किया जा रहा है - जब हम संघर्ष के कारणों की परस्पर निर्भरता को समझते हैं, तो समाधान आसान हो जाता है। किंतु प्रतीत्यसमुत्पाद की कुछ आलोचनाएं भी की जाती हैं । सबसे प्रमुख आलोचना यह है कि यह नियतिवाद (determinism) की ओर ले जाता है। यदि सब कुछ पूर्व कारणों पर निर्भर है, तो स्वतंत्र इच्छा का क्या स्थान है? बौद्ध दार्शनिक इसका उत्तर देते हैं कि प्रतीत्यसमुत्पाद नियतिवाद नहीं, बल्कि सापेक्ष कारणता है। प्रत्येक घटना बहुविध कारणों पर निर्भर है, और इनमें से कुछ को हम परिवर्तित कर सकते हैं। अविद्या को विद्या में परिवर्तित करना हमारे हाथ में है, और यही मुक्ति का मार्ग है।

दूसरी आलोचना यह है कि द्वादश निदानों की सूची कृत्रिम प्रतीत होती है। क्यों बारह, क्यों दस या पंद्रह नहीं? इसका उत्तर यह है कि बारह की संख्या पूर्णता को दर्शाती है, और पालि निकायों में विभिन्न लंबाई की सूचियां भी दी गई हैं । वस्तुतः बुद्ध ने विभिन्न संदर्भों में विभिन्न संख्या में निदानों का उल्लेख किया है - कहीं दो, कहीं पांच, कहीं दस। द्वादश निदानों की सूची सर्वाधिक व्यापक और व्याख्यात्मक है, किंतु यह एकमात्र नहीं है। यह लचीलापन बुद्ध की शिक्षा पद्धति का परिचायक है - उन्होंने श्रोताओं की क्षमता और आवश्यकता के अनुसार शिक्षा दी।

तीसरी आलोचना यह है कि प्रतीत्यसमुत्पाद को समझना अत्यंत कठिन है और यह सामान्य जन के लिए उपयोगी नहीं है। किंतु बुद्ध ने स्वयं कहा है कि यह गहन है, और इसे समझने के लिए प्रयास आवश्यक है। सरल दार्शनिक सिद्धांत प्रायः सतही होते हैं; जटिलता अस्तित्व की वास्तविकता को प्रतिबिंबित करती है। फिर भी, बुद्ध ने इसे विभिन्न स्तरों पर प्रस्तुत किया - सामान्य जन के लिए सरल रूप में और गहन साधकों के लिए विस्तृत रूप में।

समग्रता में देखें तो प्रतीत्यसमुत्पाद आधुनिक युग के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। यह हमें सिखाता है कि हमारे कर्मों के परिणाम होते हैं, कि सब कुछ परस्पर जुड़ा है, और कि परिवर्तन संभव है। वैश्विक समस्याओं - जलवायु परिवर्तन, सामाजिक विषमता, मानसिक स्वास्थ्य संकट - को समझने और हल करने के लिए यह सिद्धांत महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

## निष्कर्ष

प्रतीत्यसमुत्पाद बुद्ध के दार्शनिक चिंतन का शिखर है। यह शोध पत्र पालि निकायों में प्रस्तुत इस सिद्धांत के विविध स्वरूपों और उसकी दार्शनिक गहराई का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। संयुत्त निकाय के निदान संयुत्त और महानिदान सुत्त के विस्तृत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्रतीत्यसमुत्पाद केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा नहीं, बल्कि बुद्ध की समस्त शिक्षाओं का आधारस्तंभ है।

द्वादश निदानों का विवेचन यह प्रकट करता है कि दुःख की उत्पत्ति एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें अविद्या मूल कारण है। अनुलोम क्रम संसार की व्याख्या करता है, जबकि प्रतिलोम क्रम मुक्ति का मार्ग दिखाता है। यह द्वैध प्रस्तुति बुद्ध के व्यावहारिक दृष्टिकोण को प्रदर्शित करती है - न केवल समस्या की पहचान, बल्कि समाधान भी हैं।

पालि त्रिपिटक में प्रतीत्यसमुत्पाद की प्रस्तुति में जो विविधता दिखाई देती है, वह इसकी कठोर सूत्रबद्धता के बजाय जीवंतता को दर्शाती है। विभिन्न संदर्भों में विभिन्न रूपों में इसकी प्रस्तुति यह संकेत करती है कि बुद्ध ने इसे एक लचीले शैक्षणिक उपकरण के रूप में प्रयोग किया, न कि किसी अपरिवर्तनीय सिद्धांत के रूप में। यह बौद्ध धर्म की उपायकौशलता (skillful means) की परंपरा का प्रमाण है। चार आर्य सत्यों के साथ प्रतीत्यसमुत्पाद का अविभाज्य संबंध यह स्थापित करता है कि यह सिद्धांत बौद्ध मार्ग का केंद्र है। दुःख की उत्पत्ति और निरोध को समझने के लिए प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान अनिवार्य है। अनात्मवाद और अनित्यवाद के साथ इसका दार्शनिक संबंध बुद्ध के मध्यम मार्ग को परिभाषित करता है।

समकालीन संदर्भ में प्रतीत्यसमुत्पाद की प्रासंगिकता निर्विवाद है। आधुनिक विज्ञान, मनोविज्ञान, पारिस्थितिकी और संघर्ष समाधान - सभी क्षेत्रों में यह सिद्धांत नवीन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। यह हमें परस्पर जुड़े हुए विश्व में उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन जीने की शिक्षा देता है।

भविष्य के शोध की अनेक संभावनाएं हैं। पालि निकायों में प्रतीत्यसमुत्पाद के विभिन्न संस्करणों का और अधिक गहन तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। चीनी आगम और तिब्बती अनुवादों के साथ तुलना भी महत्वपूर्ण होगी। आधुनिक न्यूरोसाइंस और संज्ञानात्मक विज्ञान के साथ इस सिद्धांत के संवाद की संभावनाएं भी खोजी जानी चाहिए। पालि भाषा की शब्दावली का और अधिक सूक्ष्म भाषाविज्ञानिक विश्लेषण भी उपयोगी होगा।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि प्रतीत्यसमुत्पाद न केवल पच्चीस सौ वर्ष पूर्व की एक दार्शनिक शिक्षा है, बल्कि आज भी मानव अस्तित्व की गहनतम समस्याओं को समझने और हल करने का एक शक्तिशाली उपकरण है। जो इस सिद्धांत को सही रूप से देखता है, वह धम्म को देखता है; और जो धम्म को देखता है, वह बुद्ध को देखता है - यह कथन आज भी उतना ही सत्य है जितना बुद्ध के समय में था।

## References/संदर्भ ग्रंथ सूची


1. *Dīgha Nikāya* (दीघ निकाय), विशेषतः *Mahānidāna* Sutta (DN 15), Pali Text Society, London.
2. *Saṃyutta Nikāya* (संयुत्त निकाय), विशेषतः *Nidāna Saṃyutta* (SN 12), Pali Text Society, London.
3. Majjhima *Nikāya* (मज्झिम निकाय), विशेषतः *Mahātaṇhāsaṅkhaya* Sutta (MN 38), Pali Text Society, London.
4. *Aṅguttara Nikāya* (अंगुत्तर निकाय), Pali Text Society, London.
5. Vinaya *Piṭaka* (विनय पिटक), *Mahāvagga*, Pali Text Society, London.
6. Abhidhamma *Piṭaka* (अभिधम्म पिटक), विशेषतः *Paṭṭhāna*, Pali Text Society, London.
7. Buddhaghosa. Visuddhimagga (विसुद्धिमग्ग). Edited by H.C. Warren. Harvard Oriental Series. Cambridge: Harvard University Press, 1950.
8. Buddhaghosa. *Samantapāsādikā* (समन्तपासादिका). Pali Text Society, London.
9. Buddhaghosa. *Sumaṅgalavilāsinī* (सुमंगलविलासिनी) - *Dīgha Nikāya* Commentary. Pali Text Society, London.
10. Bodhi, Bhikkhu (trans.). The Connected Discourses of the Buddha: A Translation of the *Saṃyutta Nikāya*. Boston: Wisdom Publications, 2000.
11. Bodhi, Bhikkhu. The Great Discourse on Causation: The *Mahānidāna* Sutta and its Commentaries. Kandy: Buddhist Publication Society, 1984.

12. Buddhadasa Bhikkhu. *Paṭiccasamuppāda*: Practical Dependent Origination. Bangkok: Vuddhidhamma Fund, 1992.
13. Chung, Mun-keat. "The *Mahānidāna*-sutta and Its Parallels: A Comparative Study." Journal of the International Association of Buddhist Studies 31, no. 1-2 (2008): 61-94.
14. *Ñāṇananda*, Bhikkhu. Concept and Reality in Early Buddhist Thought. Kandy: Buddhist Publication Society, 1971.
15. अम्बेडकर, भीमराव रामजी. बुद्ध और उनका धम्म. नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन, 2013.
16. कोसांबी, धर्मानंद. गौतम बुद्ध: जीवन और दर्शन. नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1998.
17. कौसल्यायन, आनंद. बुद्ध दर्शन. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2005.
18. नारद, भदंत. प्रतीत्यसमुत्पाद: बौद्ध दर्शन का मूल सिद्धांत. सारनाथ: महाबोधि सोसायटी, 1985.
19. पांडेय, राजबली. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2010.
20. सांकृत्यायन, राहुल. दर्शन-दिग्दर्शन. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2009.
21. शर्मा, चंद्रधर. भारतीय दर्शन की आलोचनात्मक रूपरेखा. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2007.
22. Access to Insight. "*Paṭiccasamuppāda*: Dependent Co-arising."https://www.accesstoinsight.org (Accessed: January 05, 2026)
23. SuttaCentral. "*Nidāna Saṃyutta*." https://suttacentral.net/sn12 (Accessed: January 06, 2026)
24. Buddhist Society of Western Australia. "Dependent Origination." https://bswa.org (Accessed: January 07, 2026)
25. Baudh, J. (2024). Avijjā – The seed of dependent origination. Bodhi-Path, 26(1), 9–12.
26. Singh, N., & Kapoor, A. (2025). Bridging mindful awareness and dialectical thinking for crisis leadership: A framework grounded in dependent origination. Bodhi-Path, 28(1), 14–24.
27. Singh, R. (2025). Re-vitalizing law of causation in the context of contemporary world economy. Bodhi-Path, 29, 11–16.
28. Kumar, S. (2019). तथागत बुद्ध की देशनाओ में तृष्णा का स्वरूप: एक विश्लेषण. Bodhi Path, 17, 47-53.